ओंकार उपासना

लेखक—

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

—*—

प्रकाशक—

वेद प्रचारक मण्डल

६०/१३, रोहतक रोड, नई दिल्ली

❀ ओ३म् ❀

ओंकार उपासना

लेखक—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मनुष्य स्वभाव ही से किसी न किसी का उपासक है। इस में उपासना वृत्ति नैसर्गिक है कृत्रिम नहीं, विद्वानों ने जंगली जातियों में भी उन की बुद्धि विकास के अनुसार उपासना वृत्ति का अस्तित्व देखा है। इतिहास के मन्दिर में प्रविष्ट होकर किसी जाति के यदि पुरातन से पुरातन वर्ष पत्र को निकाला जाय तो उसमें ऐसा एक भी दिन न मिलेगा, जब कि वह उपासना-शून्य थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य मण्डल को मृत्यु लोक में अवतार धारण करते समय ही उपासना वृत्ति के तार में पिरो दिया गया है कि कहीं वह अमर लोक से विमुख न हो जाय, और इसका अनन्त के साथ सम्बन्ध बना रहे। सूर्यदेव जिस प्रकार अपने से बिछुड़े हुए ग्रहों को अपने आकर्षण द्वारा अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं, इसी प्रकार परमात्मदेव अपनी अपार दया से परमपद से पतित मायाविमुख प्राणी को अपनी ओर खींचते हैं और यह आकर्षण परम सुख की प्राप्ति की आकांक्षा के रूप में सब मनुष्यों में प्रत्यक्ष है। तीन गुणों से मिश्रित सृष्टि में, धूप छाया की भाँति परिवर्तनशील जगत् में परम सुख की प्राप्ति मानना 'मृगतृष्णा' है। क्योंकि दृश्य पदार्थ देश और काल से घिरे हुए है, इस लिए अल्प हैं, परम नहीं। जो वस्तु

अल्प है, उससे परम सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? परम सुख की प्राप्ति और परमानन्द की उपलब्धि तो देश काल से ऊपर परम प्रभु परमात्मदेव ही के लाभ से हो सकती है, अन्यथा नहीं। इस समझ को सन्त लोग आत्मिक विवेक कहते हैं। आत्मिक विवेक युक्त विवेकी भक्तजन परम सुख की प्राप्ति के लिए परमात्मदेव का जो ध्यान, आराधन और चिन्तन करते हैं, वही परम पाविनी उपासना है।

गुरु-भक्ति

आदि काल ही से सन्त लोग यह कहते आये हैं कि आत्मिक लोक की यात्रा में सफलता, बिना गुरुमुख हुए तथा गुरु सेवन किए नहीं उपलब्ध होती। जब तक गुरुदेव अपने द्वार के दीन भक्त पर दया न करें, उसको मार्ग पर न चलायें, और यात्रा में आने वाली विघ्न बाधाओं से न बचायें तब तक आत्मिक कल्याण की आशा दुराशा है। इसीलिए इस मार्ग के जिज्ञासु यात्री और प्रेमी सब के पूर्व गुरुदेव की गवेषणा करते हैं। दूर दूर देशों में पर्वतों पर, नदी नालों के किनारे और गिरि-गुफाओं में गुरु दर्शन के लिए घूमते फिरते हैं, पर किसी भाग्य वाले ही को कदाचित् कहीं आत्मनिष्ठ महात्मा का मिलाप होता है। नहीं ता बहुतेरे बेचारे भोले भाले भक्त व्यर्थ ही भटकते रहते हैं, अथवा ढोंग वा दम्भ में फंस कर तन, धन पूज कर निराश रह जाते हैं। सच है कि इस प्रलोभनपूर्ण पृथ्वी पर पर्य्यटन करने वाले प्राणियों में "आश्चर्योऽस्य वक्ता" इस परमात्मदेव का बखान करने वाला अनुभवी पुरुष आश्चर्य (दुर्लभ) है। मानुषी देहधारी गुरु का मिलाप दुर्लभ मान कर कोई मनुष्य अपने कल्याण से वंचित न रह जाय, इस लिए परम सन्त योगिराज श्रीपतंजलि ईश्वर भक्ति से समाधि सिद्धि बताते

हुए उपदेश करते हैं:-"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" परमात्मदेव काल के घेरे से ऊपर होने से ब्रह्मा और मनु आदि पूर्वज महात्माओं के भी गुरु हैं। इसका तात्पर्य यही है कि परम पद का प्रेमी परमात्मदेव ही को परम गुरु माने और आराधना काल में उसी की दया और सहायता की याचना किया करे।

न जाने किस समय गुरु सहायता की आवश्यकता आ पड़े, इस लिए अभ्यास में गुरु की समीपता बड़ी आवश्यक होती है, सो सर्वव्यापक तथा पूर्ण स्वरूप से भक्त हृदय में विराजमान भगवान् से अधिक अन्य कौन समीप होगा? अतएव जगद्गुरु जगदीश्वर अधिकतम पास होने से गुरु भावना के सर्वोत्तम पात्र हैं। वेद मार्ग में तो भक्तवत्सल भगवान् माता पिता बन्धु और सखा आदि सम्बन्धों से सम्बोधन किए गये हैं। भक्त को यह धारणा करनी चाहिए कि परम पुरुष परम गुरु परमात्मदेव मेरे पास हैं। अपने परम प्रेम के तार से मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं, वह मेरे पास हैं, मेरी सहायता में तत्पर हैं और उस दयालुदेव की दया से मेरे मार्ग के सकल विघ्न दूर और चूर हो रहे हैं।

भक्तिधर्म में गुरु चिन्तन, गुरु आराधन और गुरु ध्यानादि बताया जाता है। यहाँ तक गुरुप्रेम की प्रथा इस पथ में है कि गुरु ही को सर्वस्व जान कर भक्त लोग गुरु की उपस्थिति में उसका, और अनुपस्थिति में उसकी आकृति का ध्यान करने लग जाते हैं। योग के सम्पूर्ण रहस्यों के ज्ञाता भक्ति धर्म के मर्मज्ञ महामुनि पतंजलि को यह बात सर्वथा ज्ञात थी कि जो गुरुदेव उन्होंने बताया है, वह आकार रहित अकाय है वह अनन्त है, सर्वत्र परिपूर्ण है, पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन समेत अपनी सारी दौड़

लगाकर भी उस तक नहीं पहुँच सकती। तब उस गुरुदेव को आह्वान करने, उस का प्रेम अपने में सम्वाहन करने और उस भगवान् को अपना भक्तिभाजन बनाने का कौन साधन है? इस का समाधान योगिराज पतंजलि ने बताया है कि "तस्य वाचकः प्रणवः" उस गुरुदेव को मन मन्दिर में आह्वान करने के लिए उसका वाचक (प्रगट कर्ता अथवा नाम) ओम् है। सनातन वैदिक धर्म में अपने गुरु में परम प्रेम और परा भक्ति उत्पन्न करने के लिए ओम् परम और चरम साधन है। इसी ओम नाम से असंख्य भक्तजन सफलमनोरथ और सिद्ध काम हो गये। इस समय भी सैकड़ों सन्त जन इसी नाम में धुन लगा निमग्न रहते हैं। इस नाम का जितना अधिक प्रभाव है इस से जितनी शीघ्र सिद्धि और समाधि होती है उसका अंश भी अन्य साधनों में मिलना दुर्लभ है।

ओम् का महत्त्व

ओम् परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है। इस में ईश्वर के सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन है इस में ईश्वर के सब गुण आ जाते हैं। ऐसा पूर्ण ऐसा उत्तम ईश्वर सम्बन्धी दूसरा नाम नहीं मिलता। ओम् कहते समय किसी भी अन्य विशेषण की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु सब भाषाओं के ओम् से भिन्न ईश्वर सम्बन्धी नामों के साथ विशेषण लगाए बिना परमात्मा के सम्पूर्ण स्वरूप का बोध नहीं होता।

ऐश्वर्यवान होने से परमात्मा का नाम ईश्वर है, परन्तु इस नाम से ईश्वर की सर्वज्ञता, सर्व शक्तिमत्ता और पूर्णानन्दता सिद्ध नहीं होते। यह नाम राजों महाराजों के लिए भी साहित्य में प्रयुक्त हुआ है। परमात्मा कहने से सब से बड़ा आत्मा

इसी अर्थ का बोध होता है न कि सर्वज्ञान सर्वशक्तिमत्त्व आदि गुणों का। सर्वज्ञ कहने से ईश्वर सर्वज्ञानी है और सर्व शक्तिमान कहने से ईश्वर सर्व शक्ति युक्त है इन्हीं गुणों का बोध होता है शेष गुणों का नहीं। जिस प्रकार पण्डित लोग ईश्वर अथवा परमात्मा आदि शब्दों के साथ अनन्त ज्ञान जीवन शक्ति और आनन्द आदि विशेषण लगाते हैं इसी प्रकार मौलवी और पादरी लोग भी खुदा, अल्लाह और गॉड आदि ईश्वर नामों के साथ अनेक विशेषण लगा कर ही अपने भाव को प्रकाशित करते हैं। जैसे परमेश्वर, खुदा अथवा गॉड सर्व-शक्तिमान, अविनाशी, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और परमानन्दमय है यह कहा जाता है जैसे ओम् के साथ सर्व शक्ति आदि विशे-षण जोड़ कर वर्णन करना अनावश्यक है। ओम् कहना ही युक्त के लिए पर्याप्त है क्योंकि बीज में पेड़ की भाँति सब विशेषण इसी में समाये हुए हैं।

ओम में सर्वशक्तिमत्ता

'अ' 'उ' और 'म्' इन तीन अक्षरों से ओम् शब्द की सिद्धि होती है। 'अ' स्वर है। वैय्याकरण "स्वयं राजते इति स्वरः" जो स्वयं प्रकाशित हो, उसे स्वर कहते हैं। कोई भी स्वरहीन व्यञ्जन बोला नहीं जाता, कोई भी शब्द अथवा वाक्य केवल व्यञ्जनों से बन नहीं सकता एवं कोई भी सत्ता जिस का आश्रय 'अ' (ईश्वर) न हो, हो नहीं सकती और कोई भी रचना अथवा कार्य्य प्रकट नहीं हो सकता जब तक कि उसके होने में 'अ' (ईश्वर) की प्रेरणा। 'अ' (ईश्वर) की विद्यमानता न हो। अक्षर माला में व्यञ्जन तुच्छ शक्ति युक्त हैं वे अपने आप

को भी प्रकट नहीं कर सकते, परन्तु स्वर सर्व शक्तिमान् है। जहां स्वर किसी अन्य की सहायता के बिना स्वयं प्रकट होता है वहां सारे के सारे व्यञ्जनों के प्रकट होने का मूल कारण भी है। यही दशा पदार्थ माला और कार्य्य माला की है। 'अ' से भिन्न सर्व पदार्थ और कार्य्य व्यञ्जन अक्षरों की तरह हैं। इन सब का जीवन और प्रकाशक 'अ' है 'अ' (ईश्वर) सर्वशक्तिमान् है। उसे किसी अन्य पदार्थ की सहायता की अपेक्षा नहीं। वह स्वयं प्रकाशित है और व्यञ्जनों में स्वर की भाँति वस्तुमात्र में ओत प्रोत होकर उसे जीवन सत्ता और प्रकाश दे रहा है। वह सब का अन्तरात्मा है। यदि यह मूल सत्ता न हो तो अन्य सर्व सत्ताओं का अभाव हो जाय। "तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्" उसी के प्रकाशित होने से अन्य सब पदार्थ प्रकाश पाते हैं।

सर्वशक्तिमान् का अर्थ

'सर्वशक्तिमान्' शब्द का यह अर्थ करना कि ईश्वर जो चाहे सो कर सकता है अथवा सब कुछ कर सकता है जहाँ भक्ति भाव की त्रुटि का बोधक है वहाँ यह अर्थ अनेक दोषों से भी पूर्ण है। प्रेम से पूर्ण परम पवित्र पिता कभी अपने प्यारे परम भक्त पुत्र को नरक भेज सकता है! कभी कोई भक्त विचार सकता है कि ईश्वर परमात्मा भी पापाचरण करता है। भगवद्भक्तों के हृदय में तो परमात्मदेव दया, प्रेम पवित्रता और न्यायादि गुण युक्त ही विराजते हैं। जब कोई भी ईश्वरवादी बुद्धिमान् यह नहीं मानता कि परमात्मा अन्याय कर सकता है पाप कर सकता है अपने सारे ज्ञान को भुला सकता है अपने आप का

सर्वथा नाश कर सकता है अपने जैसा ईश्वर उत्पन्न कर सकता है अथवा अपनी प्रजा को अपने राज्य से बाहर निकाल सकता है तो 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ जो चाहे सो करता है अथवा कर सकता है कितना भक्तिशून्य, युक्तिरहित और भूल से भरा हुआ है, यह जानना बहुत ही सुगम है।

भक्ति धर्म में ईश्वर पवित्र है, प्रेम है, दया है, अतुल है और सर्व दोष रहित है इसी लिए 'सर्वशक्तिमान' का अर्थ सर्व शक्तियाँ परमात्मदेव में हैं, किया जाता है। सारी शक्तियाँ स्वरूप में पवित्र हैं। वस्तु को जानने, देखने की एक शक्ति है, परन्तु किसी मनुष्य को शत्रु समझना, किसी वस्तु को चुराने के लिए अथवा अनुचित लोभ से देखना यह दोष जानने और देखने की शक्ति का नहीं किन्तु बुरी भावना का दोष है। इसी प्रकार सुनने करने और विचारने आदि की शक्तियों में दोष नहीं है इन में दोष राग और द्वेष से होते हैं। राग और द्वेष से प्रेरित होकर जो शक्तियों का उलटा, अनुचित, अशुद्ध, और और अनीति युक्त व्यापार है वही बुरी भावना जन्य दोष है बुरी भावना और राग द्वेष अज्ञान से होते हैं। परमात्मदेव पूर्ण ज्ञान है अतएव बुरे भावों से रहित है और राग द्वेष से विमुक्त हैं। इस लिए उन की शक्तियों में दोषों की सम्भावना भी नहीं है।

सत्य को असत्य करना, असत्य को सत्य करना, अस्ति को नास्ति बनाना और नास्ति को अस्ति बनाना भी 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ नहीं है। क्योंकि उस का ज्ञान एक रस है देश काल से ऊपर है, सत्य और यथार्थ है, इस लिए ईश्वर जो वस्तु है उस का होना और जो नहीं है उस की नास्ति को एक रस जानता है। उसका ज्ञान काल में नहीं घिरता। भूत भविष्यत्

और वर्त्तमान के भेद एक देशी पदार्थों के लिए हैं, अनन्त के लिए नहीं। अतः परमात्मा के ज्ञान में जो अभाव है, शून्य है, नास्ति है, यदि वह भाव और अस्ति हो जाय तो उस का ज्ञान ही मिथ्या ज्ञान हो जाय। जैसे गणित शास्त्र में एक और एक मिल के दो बनते हैं, यह जानते हुए भी किसी क्षण कोई यह समझने लग जाय कि एक और एक मिल के तीन अथवा चार बनते हैं तो उस का सारा का सारा गणित ज्ञान मिथ्या हो जायगा। ऐसे ही परमात्मा का नास्ति ज्ञान अस्ति हो जाय अभाव ज्ञान भाव हो जाय तो जहाँ किसी भी वस्तु की सत्यता न रहेगी वहाँ परमात्मा का ज्ञान भी सिद्ध न हो सकेगा।

तात्पर्य यह है कि सर्व शक्तिमान् का अर्थ जो लोग यह करते हैं कि परमात्मा जो चाहे करता है अथवा कर सकता है और अभाव को भाव में और भावको अभाव में लाता है यह भ्रममूलकविचार है। भक्तों के भगवान् में सर्व शक्तियां हैं, पर शुद्ध हैं दोषरहित हैं और एक रस हैं।

ओम् सर्वज्ञ है

मनुष्य का सारा ज्ञान और सारे विचार शब्दों में ही पिरोए हुए हैं। हम किसी भी वस्तु का ध्यान करें किसी भी वस्तु को सोचें हमारा ध्यान और सोचना शब्दों ही में होगा। यह सत्य है कि हमारा मन हमारी बुद्धि शब्द क्षेत्र से बाहर कभी नहीं चले और न ही चलना जानते हैं। जो शब्द मानुषी ज्ञान का आधार हैं उनकी रचना अक्षरों के संयोग से होती है। जो शब्द मिल कर ज्ञान के आधार शब्दों को जन्म देते हैं उन सब में आदिम अक्षर और अपने से भिन्न सब अक्षरों का

प्रकाशक अक्षर 'अ' है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो 'अ' आदिम अक्षर है। अन्य सब अक्षरों में 'अ' है। अक्षरों में शब्द हैं और शब्दों में ज्ञान है। यदि 'अ' न हो तो अन्य कोई भी अक्षर न हो। कोई भी अक्षर न हो तो शब्द मात्र का अभाव हो जाय। शब्दों के अभाव से ज्ञान का अभाव सहज सिद्ध है। इस लिए सारे अक्षरों व शब्दों के प्रकाशक 'अ' ही में सर्व ज्ञान है। 'अ' जहाँ वर्णमाला में वर्ण है वहाँ 'ओम' का भी भाग है। इस से महात्मा लोग सिद्ध करते हैं कि जैसे 'अ' वर्ण में अन्य सब वर्ण और शब्द जन्य सारा ज्ञान है इसी प्रकार 'अ' ईश्वर में सम्पूर्ण ज्ञान है। 'अ' (परमात्मा) सर्वज्ञ सर्वदर्शी है।

'अ' अक्षरों में आदि अक्षर है। इसी से वर्णों, शब्दों और शब्दजन्य ज्ञानों की उत्पत्ति है। अध्यात्मवाद में 'अ' परमात्मा का नाम है और यह सूचित करता है कि परमेश्वर ही से ज्ञान की उत्पत्ति हुई है। और वही ज्ञान का आदि स्रोत है।

'अ' की ध्वनि कण्ठ से निकलती है। अन्य सब वर्णों की ध्वनि कण्ठ के ऊपरसे निकलती है हां 'क' और 'ह' की ध्वनि का स्थान भी कण्ठ है परन्तु जब तक इन के साथ स्वर न हो तो ये वर्ण बोले नहीं जा सकते। इन सब से सन्त लोग यही सिद्ध करते हैं कि सब ज्ञानों, सब ध्वनियों और सब स्वरों का आदिम 'अ' (परमात्मा) है।

जगत् का आदि मध्य और अन्त ओम् है

ध्वनि की आदि कण्ठ 'अ' से है और मध्य होठों में एवं अन्त नाक में है अर्थात् ङानुनासिक अक्षरों में है। आदि का

प्रतिनिधि 'अ' है। सर्वथा होठों में बोला जाने वाला मध्य का प्रतिनिधि 'उ' है। पांच वर्गों में पवर्ग अन्तिम वर्ग है। पांचों वर्गों के वर्णों में अन्त का वर्ण 'म्' है। पांच वर्गों के ङ्, ञ्, ण्, न् और म ये पाँच सानुनासिक वर्ण हैं पाँचों सानुनासिकों में अन्तिम सानुनासिक 'म' है। होठों को बन्द करके नाक में ध्वनि गुञ्जाई जाय तो वह ध्वनि पूर्णतया नाक की ध्वनि होगी। और वह ध्वनि अन्तिम होगी। उस से आगे कोई भी ध्वनि गुञ्जाई नहीं जा सकती। ठीक ऐसी ध्वनि 'म्' की है। इस लिए पूर्णता से अन्त का प्रतिनिधि 'म' है। 'अ' 'उ' और 'म्' से ओम् का प्रकाश होता है। मुनि लोग इस नाम रचना से यह सिद्ध करते हैं कि जैसे ध्वनि की उत्पत्ति तथा आदि 'अ' वर्ण से है, ऐसे ही सृष्टि की उत्पत्ति तथा आदि 'अ' परमात्मा से है। यथा ध्वनि के मध्य का पूर्ण प्रतिनिधि 'उ' वर्ण है, तथा सृष्टि के मध्य में सो इस का आधार और पालन पोषण कर्त्ता 'उ' (परमात्मा) है। जैसे ध्वनि की पूर्णता से समाप्ति 'म्' वर्ण में है, एवमेव सृष्टि का अन्त, सृष्टि का लय 'म्' (परमात्मा) ही में है। सारांश आदि में ओम् है मध्य में ओम् है, और अन्त में भी ओम् ही है। ओम से रचना, ओम से पालना और ओम् ही से लय है।

'अ' ध्वनि मुख के भीतर और सूक्ष्म है। 'उ' की ध्वनि मुख से बाहर और स्थूल है। और 'म्' की ध्वनि समाप्ति सूचक और स्थूल सूक्ष्मता मिश्रित है। सृष्टि की सूक्ष्म दशा में ओम् है, स्थूल अवस्था में ओम् है और समाप्ति पर स्थूल सूक्ष्मता दशा में भी ओम् ही है।

ओम् सर्वान्तर्यामी, सब का आधार, आश्रय और जीवन है

'अ' की ध्वनि कण्ठ से निकलती है। इस के निकलने में जीभ, तालु, होठों और नाक में गति उत्पन्न करनी नहीं पड़ती। 'अ' की ध्वनि किसी की अपेक्षा रहित स्वतन्त्र ध्वनि है। 'अ' का सङ्केत भी।' इस प्रकार का स्वतन्त्र सङ्केत है। विस्तृत कण्ठ से जीभ हिलाए बिना जो आकृति बनती है, पण्डितों के मत में वही यह '।' आकृति अथवा सङ्केत है। अन्य सब स्वरों में 'अ' की ध्वनि मिली हुई है। कण्ठ के बिना केवल जीभ, केवल तालु, केवल होंठों, और केवल नासिका से कोई भी वर्ण उच्चारण नहीं किया जा सकता। जो भी स्वर निकालो अथवा आलापो उस में कण्ठ का स्वर अवश्य होगा। जो भी वर्ण उच्चारण करो उस में 'अ' की ध्वनि अवश्यमेव होगी, जैसे कण्ठ की ध्वनि, जीभ की ध्वनि में, तालु की ध्वनि में, होठों की ध्वनि में, नासिका की ध्वनि में रमी हुई है, और सब ध्वनियों का आधार आश्रय और जीवन है, इस के बिना कोई भी ध्वनि नहीं निकाली जा सकती, ऐसे ही 'अ' सब वर्णों में रमा हुआ है। सब का आधार आश्रय और जीवन है। 'अ' का उचारण बिना मिलाए अन्य किसी भी वर्ण का उच्चारण नहीं हो सकता। 'अ' ही के आधीन सब वर्णों की सत्ता है।

यथा 'अ' सब वर्णों में रमा हुआ है, अन्य वर्णों के उच्चारण का आधार आश्रय और जीवन है। वह स्वयं स्वतन्त्र है। अन्य सब वर्ण परतन्त्र हैं 'अ' के आधीन हैं। ऐसे ही 'अ' (ओम्) सर्वान्तर्यामी है, सब में रमा हुआ है और स्वतन्त्र है। अन्य सारे पदार्थ इसके समीप ऐसे ही हैं जैसे अ वर्ण के

समीप शेष सम्पूर्ण वर्ण। अतएव 'ओम्' सब पदार्थों का आधार आश्रय और जीवन है। सब सत्ताएँ परतन्त्र हैं और 'ओम्' के आधीन हैं। सब का अन्तरात्मा 'ओम्' है।

अ वर्ण की ऐसी आकृति सब वर्णों में ज्ञानियों ने सिद्ध की है। इस का भी आत्मवाद में यही तात्पर्य है कि ओम् प्रत्येक वर्ण में व्यापक और विद्यमान है।

ओम् आनन्दमय और प्रेम स्वरूप है

'अ' का उच्चारण अपने स्वरूप में पूर्ण है। इसको किसी दूसरे वर्ण की सहायता की अपेक्षा नहीं। सारे वर्ण 'अ' के बिना बोले नहीं जाते, अतएव वे अपूर्ण और अधूरे हैं। अ वर्ण का उच्चारण सब वर्णों के उच्चारण में रमा हुआ है, यहाँ तक कि शब्द मात्र में अ वर्ण की विद्यमानता है, और सब शब्दों में व्यापक वस्तु ही महान् होती है। अतएव अ वर्ण पूर्ण, व्यापक और महान् है। अध्यात्मवाद में 'अ' से ओम् बनता है। जैसे वर्णमाला में अ वर्ण पूर्ण वर्ण है, अन्य सारे वर्णों में व्यापक है, और अन्य सब वर्णों से महान् है, ऐसे ही ओम् स्वरूप में पूर्ण हैं, किसी भी पदार्थ की अपेक्षा नहीं रखता। अन्य सारे पदार्थ ओम् के आश्रित हैं। वर्णों में अ वर्णवत् ओम् सब पदार्थों में व्यापक है, सब से महान् है। जो वस्तु पूर्ण और महान् हो वही आनन्दमय हो सकती है, अतएव ओम् आनन्द स्वरूप है। पूर्णानन्दमय ही परम प्रिय स्वरूप हो सकता है, इस लिए भक्त लोग भगवान् का परम प्रिय स्वरूप भी कहते हैं।

ऊपर कहे 'ओम्' के सारे व्याख्यान का सारांश स्वल्प और शास्त्रीय शब्दों में कहा जाय, तो ओम् का अर्थ सच्चिदानन्द अथवा अस्तिभाति प्रिय स्वरूप परमेश्वर है। ओम् भगवान् अनन्त

जीवन, अनंत ज्ञान और परम प्रेम स्वरूप है।

ओम् निराकार है

ओम् अक्षर की आकृति कल्पित है। वह परिवर्तित हो सकती है, और होती आई है। इस समय भी ओम अनेक आकृतियों में लिखा जाता है। भिन्न २ भाषाओं में भी उस के भिन्न २ आकार हैं। परन्तु 'ओम्' का उच्चारण, 'ओम्' की ध्वनि स्वाभाविक है, किसी ने उस की कल्पना नहीं की। ध्वनि सब समयों में एक रही है, उस में परिवर्त्तन हुआ भी नहीं, और हो भी नहीं सकता। सब भाषाओं में वह एकसी है। इस लिए ध्वनि का उच्चारण ही 'ओम्' है, आकृति नहीं, आकृति केवल संकेत मात्र है।

बालक को 'ओम' का उच्चारण बताये बिना आकृति मात्र से 'ओम्' का ज्ञान कदापि नहीं हो सकता। परन्तु आकृति के ज्ञान से सर्वथा शून्य, जन्मान्ध को ओम का उच्चारण सुनकर 'ओम की ध्वनि का पूर्ण और शुद्ध ज्ञान हो जाता ह। वास्तव में शब्द का प्रकाश उच्चारण में होता है, उच्चारण अर्थात् ध्वनि निराकार है, अक्षर और शब्द दोनों हैं। इस लिए सभी दार्शनिक पंडित शब्द को निराकार मानते चले आये हैं।

ओम् नित्य है

आकृति का ज्ञान आंखों से और शब्द का श्रोत्र से होता है, आंखों से नहीं। आकृतियों में परिवर्त्तन होता रहता है, वे बनती भी हैं और बिगड़ती भी। यदि शब्द भी आकारवान् होता तो बनता बिगड़ता रहता, और अनित्य होता, कुशाग्रबुद्धि आर्य दार्शनिक शब्द को निराकार और नित्य मानते हैं। 'ओम्'

शब्द है, इसी लिए निराकार नित्य और सनातन है। इस का वाच्य भी निराकार और सनातन है।

ओम् अजन्मा है

वैय्याकरणों के मत में "ओमिति अव्ययम्" ओम् अव्यय है। वे अव्यय उस शब्द को कहते हैं जो विभक्ति लिंग और वचनों के परिवर्त्तन में न आवे। स्वरूप न बदले, जैसा है वैसा ही बना रहे। ओम् शब्द का वाच्य सच्चिदानंद स्वरूप परमेश्वर देव भी परिवर्तन में नहीं आता, अव्यय, अजन्मा और एक रस है॥

ओम् एक है

'ओम् से भिन्न परमात्मदेव के सारे नामों के एक दो और बहुवचन होते हैं, यथा परमात्मा, परमात्मानौ परमात्मनः, एक परमात्मा, दो परमात्मा और बहुते इसी परमात्मा प्रकार ईश्वर आदि शब्दों के एक दो और बहु वचन बनते हैं। अन्य भाषाओं में भी ईश्वर सम्बन्धी नामों में ऐसा ही परिवर्त्तन होता है, परन्तु 'ओम' अव्यय है। अव्यय एक रस रहता है, वह परिवर्तन में नहीं आता, इसलिए सब वैय्याकरणों के मत में ओम् के दो और बहुवचन नहीं होते, उसका एक ही वचन रहना है क्योंकि 'ओम्' एक ही है।

———

'ओम् स्वीकार अर्थ में

किसी बात के स्वीकार करने के अर्थ में भी 'ओम्' आता है। पुरातन काल में आर्य लोग परमात्मा के परम भक्त थे,

प्रत्येक कार्य के आरम्भ में 'ओम् तत्सत् का उच्चारण' किया करते थे। वे समझते थे कि हमारे कार्यों में 'ओम्' ही सहायक है यह कार्य वैसा ही होगा जिसका जैसा होना 'ओम्' के ज्ञान में है। जैसे कोई भी सेवक, कोई भक्त और कोई भी प्रेमी अपने स्वामी, अपने भगवान्, अपने प्रियतम सखा की आज्ञा इच्छा और अनुमति के बिना कोई कार्य नहीं करता, और किसी वस्तु को स्वीकार नहीं करता, इसी भाव से प्रभावित, भारत के पुरातन भगवद्भक्त सम्पूर्ण कार्यों के आदि में 'ओम् तत्सत्' और किसी के कथन अथवा पदार्थ के स्वीकार में केवल 'ओम्' कह कर कार्यारम्भ और बात को स्वीकार करते हुए, परमेश्वर की अनुमति की प्रधानता प्रदर्शित करते थे। वह आर्य सन्तजन अपने प्रत्येक कार्य का ओम् को साक्षी और सहायक समझते हुए अपने कर्मों ही में उसका पूजन किया करते। सब कार्यों के आदि में ओम् नाम का मंगल मानना, प्राचीन आर्यों की परमेश्वर परायणता का एक उज्जवल और बलन्त प्रमाण है।

संकेत से 'ओम्' सर्वत्र पाया जाता है

सब देशों में संकेत की भाषा में एकता है। सुख दुःख के संकेत, हर्ष शोक के संकेत प्रायः सर्वत्र एकसे हैं, क्रोध, लोभ, मान, ईर्षा, प्रसन्नता, विषाद, भय, अनुकूलता, प्रतिकूलता, धैर्य, शान्ति और वीरता, आदि का प्रकाश हाथ, मुख, आंख, और चेहरे आदि की आकृति के सङ्केत से जब किया जाता है तो प्रायः वे सब जातियों और देशों में समान ही होते हैं। मनुष्यों के हृदयगत भावों में कोई भेद नहीं है, इस लिए भावों के प्रकाशक संकेतों में भी सवत्र स्वभाव सिद्ध मान्यता है। ऊपर कहा गया है, कि पुरातन आर्य्यजन सर्व कार्य्यों में ईश्वर का नाम स्मरण किया करते थे, हर्ष में भी ओम् और विषाद में

भी ओम् ही उच्चारण किया करते । जब कभी कोई आश्चर्य्यजनक दृश्य दिखाई देता, कोई आश्चर्य्यजनक बात स्मरण हो आती, और आश्चर्य्यमयी घटना घटित हो जाती तो ओम् नाम स्मरण किया जाता, मानों वे महाभाग ऐसी सब बातों में जगन्नियन्ता ही का नियम काम करता हुआ जानते थे । उपरोक्त भावों के प्रकाश काल में ओम् का जो तुरन्त उच्चारण होता था, वही भाव प्रकाशक सङ्केत आज आहा ! अहह: !! ओहो !!! आदि रूपों में बदल गया है। और आर्य्य जाति की अन्य अनेक धार्मिक, सामाजिक रीतियों नीतियों की भाँति हर्ष विषादादि के समय ओम् का संकेत भी अपभ्रंश रूप में सब देशों में एकसा पाया जाता है। आज भी भक्त और प्रेमी लोग हर्ष विषाद और आश्चर्य आदि के समय परमेश्वर का नाम लेते अवश्य हैं, पर अपने २ सम्प्रदाय के अनुसार ।

वेद के आदि और अन्त में ओम्

महामुनि पाणिनि के मत में "प्रणवष्टेः" ८-२-८९ "यज्ञ कर्मणि टेरोमित्यादेशः स्यात् । अपां रेतांसि जिन्वतोम्" यज्ञ में वेद मंत्रों के अन्त की 'टि' 'स्वर' को ओम् आदेश हो जाय, कहा है, यथा 'जिन्वति' के इकार को ओम् बनाकर 'जिन्वतोम्' किया गया है, इस से यह सिद्ध हुआ कि वेद के जितने मन्त्र हैं उतनी संख्या से ही उन में ओम् है ! "ओम् अभ्यादाने" ८-२-८७ इस सूत्र से पाणिनि मन्त्र के आदि में लुप्त ओ३म् बताते हैं। इस प्रकार वेद मन्त्रों की संख्या से ओम् संख्या दुगुणी हो जाती है।

"ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।" मनु० २-७४

वेद के मन्त्र के पाठ के आदि अन्त दोनों में ओम् का

उच्चारण करे। आर्य्यवर महर्षि वेद मन्त्रों के पाठ के समय आदि अन्त में ओम् नाम का उच्चारण करके अपने जीवन से अपनी क्रिया और भावों से इस बात का सजीव उदाहरण उपस्थित करते थे कि वे वेद का आदि से अन्त तक ब्रह्मप्रतिपादन ही मुख्य तात्पर्य मानते हैं। दो वर्तनों से जो वस्तु घिर जाय वैद्य उसे सम्पुट कहते हैं। मन्त्र के आदि अन्त में 'ओम्' आ जाने से मन्त्र सम्पुट हो जाता है। ऐसे सब मन्त्रों का ओम् से सम्पुट है। यद्यपि वेदों में प्राकृत विद्याओं का वर्णन है, पर वे विद्याएं ब्रह्म वर्णन में सम्पुट हो रही हैं। वेद का मुख्य वर्णन ईश्वर है। मुख्य तात्पर्य मनुष्यों को भक्त बना कर भगवान् तक पहुँचाना है।

ब्रह्मसूत्रों के निर्माता व्यासदेव 'तत्तु समन्वयात्' सूत्र ३ अ० १ पा० १—इस सूत्र से बताते हैं कि वह ब्रह्म ही वेद का विषय है, ब्रह्म ही का वेद प्रतिपादन करते हैं, 'समन्वयात्' जैसा परब्रह्म का सम्बन्ध विश्व से है, वैसा ही साक्षात् अथवा परम्परा से सकल वेद मन्त्रों से भी है। कलिकाल में वेदों के सर्वोपरि ज्ञाता, परम वेदभक्त, परम कारुणिक, प्रभु दयानन्द भी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वेद का प्रतिपाद्य बताते हुए लिखते हैं कि परमेश्वर ही वेदों का मुख्य अर्थ है और उस से पृथक् जो यह जगत् है सो वेदों का गौण अर्थ है। इन दोनों में से प्रधान का ही ग्रहण होता है। इस से क्या आया कि वेदों का मुख्य तात्पर्य परमेश्वर ही के प्राप्त कराने और प्रतिपादन करने में है।

ओम् और आमीन

लिखा जा चुका है, कि पूर्व काल के आर्य्य लोग प्रत्येक कार्य, हर्ष, विषाद और आश्चर्य आदि में, यज्ञ के आदि अन्त में ओम् का उच्चारण किया करते थे। अपने यज्ञों, मन्त्र पाठों, और कार्यों के आदि अन्त में ओम् का उच्चारण करना उनको ओम् में सम्पुट करना है। दूसरे शब्दों में अपने यावत् कर्मों को ब्रह्मार्पण करना है। आर्य्यों के इस ब्रह्मार्पण के समान दूसरा दृष्टांत जगत् में नहीं है। यह समर्पण आर्यों की निष्कामता, और ईश्वरपरायणता का प्रबल प्रमाण है। स्वर्गवासी स्वामी रामतीर्थजी की अनुमति है, कि ईसाई आदि धर्मों में प्रार्थना के अन्त में जो आमीन अथवा एमन पढ़ा जाता है, वह ओम् ही का रूपांतर है, क्योंकि आर्य लोग प्रार्थना आदि के अन्त में ओम् का पाठ करते थे, और वही पाठ अन्य शब्दों की भांति एमन, आमीन में बदल गया है।

धर्मों में ओम् की विद्यमानता

स्वामी राम के कथनानुसार ईसाई धर्म और इस्लाम में 'ओम्' आमीन के रूप में विद्यमान है। कोई २ तो यह भी अनुमान करते हैं कि बाईबल में जो खुदा कहता है कि मेरा नाम 'I am' है, यह ओम् ही को ओर संकेत है, तिब्बत तथा अन्य देशों के बौद्ध लोग 'ओम्' मणिपद्मे ओम्' इस मन्त्र का जप करते हैं। जैन मत में भी ओम् का आदर है। वे लोग इसे बीज अक्षर मानते हैं। कबीर साहब, चरणदासजी आदि सारे सन्त इसको गाते रहे हैं। खालसापन्थ की ग्रन्थ वाणी में भी 'ओंकार सत्तनाम' 'ओंकार वेदनिर्मथ' इत्यादि अनेक स्थलों में 'ओम्' का वर्णन है। और तन्त्र ग्रन्थों में तो 'ओम्' का

सहस्रों वार वर्णन आया है।

ऊपर के वर्णन से यह भी सिद्ध होता है, कि धार्मिक संसार में सब से अधिक जन 'ओम्' नाम ही का जाप करते हैं। ईसाईयों और मुसलमानों को न भी गिनें तो बौद्धों में 'ओम् मणिपद्मे' होने पर ओम् जपने वालों की संख्या सब से अधिक ही है।

ओम् स्मर

जिस वेद से सारे ज्ञानों का जन्म हुआ है, और जो सारे धर्मों का आदि स्रोत है, उस वेद में किसी ईश्वर नाम के स्मरण का आदेश है तो वह ओम् ही है। 'ओम् क्रतो स्मर' हे मनुष्य! ओम् का स्मरण कर। 'ओम् खम्ब्रह्म' यजु०४०-१७ ओम् आकाशवत् निराकार सर्वत्र परिपूर्ण और ब्रह्म है।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ।

ऋ० मं० १ सू०१६४ मन्त्र ३६ ॥

जिस ऋग्वेद के सार परम अक्षर में सारे लोक और इन्द्रियाँ स्थित हैं, जो उसको नहीं जानता वह ऋग्वेद (के पाठ) से क्या करेगा। (और) जो उस अक्षर को जानते हैं, वे इस संसार में भलीभाँति रहते हैं। इस से अधिक ओम् नाम की महत्ता, इससे अधिक ओम् का गौरव, और इससे अधिक ओम् का महागायन शब्दों में और कोई क्या करेगा। वास्तव में पवित्र वेद ने जो पदवी ओम् को दी है, वह परम है।

वैदिक ग्रन्थों में बार बार ओम् का गायन किया गया है।

और जिन महाभाग भक्तों को उपनिषद् रूपी ब्रह्म मन्दिर में प्रवेश करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है, वे मुक्त कण्ठ से कहेंगे कि उपनिषदें ओम् ही का यश गाती हैं, और 'ओम्' अक्षर ही की उपासना बताती हैं। उपनिषदों के पाठ से तो ऐसा प्रतीत होता है, कि यह ब्रह्मविद्या की निर्मल गंगा ऋषियों के मस्तक शिखरों से उतर कर संसार को पावन करती हुई अन्त में ओम् सागर में समा रही है।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।

कठ० १-१५।

आत्मज्ञानी गुरु शिष्य को उपदेश करते हुए कहते हैं, कि सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, सारे तप जिस को गा रहे हैं, और जिस पद (प्राप्ति) की इच्छा करते हुए (तपी अथवा ब्रह्मचारी गण) ब्रह्मचर्य धारण करते हैं, उस पद को संक्षेप से मैं तुम्हें कहता हूँ (वही पद) 'ओम्' यह पद है। 'ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्तिवः पाराय: तमसः परस्तात्' (मुण्डकोपनिषद्)। महात्मा उपदेश देते हैं कि हे उपासको! अन्धकार से पार होने के लिए परमात्मा को 'ओम्' ऐसा लक्ष अथवा ध्येय बनाकर चिंतन करो, तुम्हारा कल्याण हो। सारे माण्डूक्योपनिषद् में ओम् ही का यश गायन किया है। इस उपनिषद्कार महात्मा ने त्रिलोकी का समावेश ओम् में सिद्ध किया है। ओमति ब्रह्म, ओमिदं सर्वम्। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा है, ओम् ब्रह्म है, ओम् ही यह सारा विश्व है। उपनिषदों के सम्बंध में शेष इतना कथन पर्याप्त है कि छांदोग्य और बृहदारण्यक के उपासना भागों में ओ३म' उपासना का बड़े विस्तार से वर्णन है, उपनिषदों में वर्णन हुए सब संतों की सम्मति में

ओम् ही ब्रह्म, ओम् ही विश्व, ओम् ही प्राण आत्मा और ओम् ही परम ध्येय है, इस लोक और परलोक में सफल बनाने वाला भी ओम् है और यही परम अवलम्बन सहारा और भरोसा है।

सब सन्तों में ओम् की उपासना

ब्राह्मण ग्रन्थों से आरम्भ करके पुराणों पर्यन्त साहित्य में जितने महात्माओं का वर्णन आया हैं, सब ओम् के ही उपासक थे। मनु महाराज तो 'ओम्' ३ वेदों का सार बताते हैं, और इस को "एकाक्षरं परं ब्रह्म" परं ब्रह्म कहते हैं। इन्हीं महाराज ने बताया है कि "जप्येनैव तु संसिद्ध्येत् ब्राह्मणो नात्र संशयः" इस में कोई संशय नहीं कि ब्राह्मण जप ही से सिद्ध हो जाता है। ब्रह्मा से जैमिनि पर्यन्त महर्षि मण्डल ओम् ही का उपासक रहा है। रामायण में वर्णन आता है कि सिद्धाश्रम को जाते हुए, गंगा के किनारे, प्रातःकाल परम कर्मयोगी मंगलनाम श्रीराम ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण समेत स्नानादि करके "जेपतुः परमं जपम्" गायत्री सहित 'ओम्' परम को जपा।

एक दिन श्री युधिष्ठिर महाराज प्रातःकाल स्नान संध्या आदि से निवृत्त होकर वस्त्रधारण और परिष्कार आदि करके अखण्ड ब्रह्मचारी, शरशय्याशायी भीष्म के दर्शनार्थ जाने की आकांक्षा से प्रथम भगवान् श्रीकृष्ण के पास गये। युधिष्ठिर जी ने देखा कि श्रीकृष्ण अकम्प और अटल भाव से...."ध्यानमेवापद्यत" ध्यानारूढ़ हैं, उस दिन युधिष्ठिर जी श्रीकृष्ण महाराज को संग लेकर भीष्म जी के पास गये और प्रश्न पूछने की आज्ञा लेकर सायं समय हस्तिनापुर लौट आये। श्रीकृष्ण राजा

युधिष्ठिर से पृथक् होकर अपने शयनागार में प्रविष्ट हुए। निर्दोष नींद लेते हुए जब चार घड़ी रात्रि शेष रही महाराज उठकर बैठ गये, और अपनी सारी इन्द्रियों और चित्तवृत्तियों को एकाग्र करके श्री कृष्ण देव ने उस समय 'दध्यौ ब्रह्म सनातनम्' सनातन ब्रह्म 'ओम्' का चिर काल तक ध्यान किया।

श्रीकृष्ण जी ने ओम् को 'एकाक्षरं ब्रह्म' एकाक्षर ब्रह्म कहा है, और गीता में यह भी बताया है कि 'वेद्यं पवित्रमोंकारम्', पवित्र ओंकार जानने योग्य है। गीता के पाठ से यह बात निश्चित प्रतीत होती है कि श्रीकृष्ण महाराज के समय ब्रह्मज्ञानी और सारे वैदिक धर्मी लोग प्रत्येक शुभ कर्म के प्रारम्भ में 'ओम् तत्सत्' का पाठ पढ़ा करते थे, क्योंकि श्रीकृष्ण कहते हैं :—

"ओम् तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मण-
स्त्रिविधः स्मृतः"

गीता १७-२३।

'ओम् तत् सत्' इन तीन पदों का ब्रह्मनिर्देश कहा गया है। "इसलिए ब्रह्मवादियों के यज्ञ दान तप आदि शास्त्रोक्त कर्म, सदा ओम् उच्चारण करके ही किये जाते हैं"। ध्यान में निपुण बौद्ध भिक्षु भी एकअक्षर ओम् ही में अपने आप का निर्वाण करते हैं। श्री शंकराचार्य इसको प्रतीक मानकर उपासना करना बताते हैं। देशी भाषाओं में अपने भावों को प्रकाशित करने वाले भक्ति धर्म के अनुयायी दादू, कबीर, चेतन, चरणदास श्री नानकजी आदि सन्तजन सीधे अथवा प्रकारान्तर से ओम् ही के भक्त थे। सन्तराज स्वामी दयानन्दजी नियम से नित्य बड़ी देर तक ओम् के ध्यान में लीन हुआ करते थे। महाराज ने

संन्यासियों को ओम् का जप करने की प्रबल प्रेरणा की है। स्वामी राम जब विमल विस्तृत आकाश में पूर्णचन्द्र को देखते, जब उन्हें कोई गरजती हुई नील घटा दिखाई देती, और जब कभी कोई अद्भुत दृश्य उनके दृष्टिगोचर होता तभी वे 'ओम्' का गायन करने लग जाते, यहाँ तक कि निमग्न हो जाया करते थे।

इस समय भी सैकड़ों साधु, संन्यासी, सूफी, फकीर और सज्जन गृहस्थ अपने मन में ओम् नाम की माला जपते हैं। और परमानन्द की प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन इसी शब्द को समझते हैं।

ओम् सोहम्

बहुत से महात्मा जन 'ओम् सोहम्' का श्वास प्रश्वास के साथ जप करते हैं। कइयों को केवल सोहम् का जप करते भी देखा है। गोरक्षा पद्धति, हठ योग प्रदीप, आदि योग ग्रन्थों और चरणदास आदि महात्माओं की वाणियों में सोहम् जाप का अर्थ, वह (ब्रह्म) मैं हूँ लोग करने लग गये हैं। पर महात्माओं के मत में इस अर्थ का आदर नहीं है। ध्यान विद्या के भेदों को जानने वाले मुनिजन सोहम् को ओम् ही बताते हैं। जैसे व्याकरण शास्त्र में प्रत्ययों के विधान करते हुए सुगमतार्थ कई अक्षर जोड़े जाते हैं। ऐसे ही श्वास प्रश्वास के साथ जप करते समय सुगमता हो, यह सोच कर नवीन सन्तों ने ओम् के साथ 'स' और 'ह' यह दो अक्षर जोड़ दिए हैं। भीतर को सांस खींचे तो 'सो' की लम्बी ध्वनि प्रतीत होगी, और यदि नाक से धीरे २ बाहर सांस छोड़ते जायें तो 'हम्' की गूंज ज्ञात होगी। इसी क्रम को और स्वाभाविक क्रम सोच कर सज्जनों ने 'ओम्' में 'स' और 'ह' मिलाए हैं। यदि व्याकरण के व्यर्थ प्रत्यय अक्षरों की भाँति

'स' 'ह' का बाध कर दिया जाय तो शेष 'ओम्' ही रह जायगा।

ओम का उच्चारण सुगम और कोमल है

सब धर्मों की पुस्तकों में सब देशों की भाषाओं में और सब सन्तों के रसीले संगीतों में परमात्मा के जितने नाम आए हैं, उन सब में अतीव कोमल, महामधुर, अतिशय सुगम 'ओम्' नाम है। ग्रामों के वासी 'श' आदि का ठीक उच्चारण नहीं कर सकते इसलिए ईश्वर, ईश और खुदा आदि नामों को बिगाड़ कर ईसर, ईस खुदा पुकारते हैं। God तो उनसे कहा ही नहीं जाता। अच्छे से अच्छा पश्चिमी पण्डित भी एक दो दिन में परमात्मा नहीं कह सकता, किन्तु परमात्मा ही कहेगा। पर 'ओम्' ऐसा सुगम, ऐसा कोमल है कि किसी भी देश का वासी, वह ग्रामीण हो चाहे नागर, सुबोध हो चाहे सर्वथा अबोध, अपढ़ हो चाहे पंडित दो चार पल ही में इसका शुद्ध उच्चारण सीख सकता है। यह नाम कठोरता रहित है, सब देशों और मनुष्यों के लिए समान है।

अनुभूति स्वरूपाचार्य्यनामक एक व्याकरण के पण्डित हो गए हैं :—

कहते हैं कि एक दिन वह किसी नगर में धुरन्धर पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ कर रहे थे इन का ऊपर की दन्तपंक्ति का एक दाँत टूटा हुआ था। प्रसङ्ग वश सप्तमी विभक्ति का बहुवचन 'पुन्सु' कहने लगे, परन्तु टूटे दाँत के स्थान से अकस्मात फूँक निकल गई और 'पुन्सु' के स्थान में 'पुन्छु' अशुद्ध

उच्चारण हो गया। 'पुन्त्सु' शब्द सुनते ही प्रतिपक्षियों ने अपनी जय की घोषणा कर दी। अनुभूतिस्वरूप जी ने अपने 'पुन्त्सु' को शास्त्रसम्मत सिद्ध कर दिखाने के लिए दिन का अवकाश मांगा, और वह अवकाश उन्हें दे दिया गया। रात्रि भर में सारस्वत व्याकरण की रचना की गई, और अगले दिन आकर आचार्य्य जी ने अपने निशिनिर्मित व्याकरण से 'पुन्त्सु' शब्द की सिद्धि प्रतिपक्षियों के सन्मुख उपस्थित की।

ऊपर की कथा के कथन का यही प्रयोजन है, कि यदि किसी के मुँह में दान्त न हों तो वह जिन शब्दों में दांतों से बोले जाने वाले अक्षर आते हैं, उन शब्दों को नहीं बोल सकता। इसीलिए बच्चों और बूढ़ों के लिए खुदा और गाड आदि नामों का उच्चारण कठिन हो जाता है। किसी मनुष्य की जीभ कट गई हो तो वह भी तकारादि अक्षरों युक्त शब्दों को नहीं बोल सकता। तुतले और हकले मनुष्यों की जो दशा बोलते समय होती है, और जो अक्षरों का सत्यानाश वे करते हैं, उसे सब ही जानते हैं। पर गूँगा बेचारा तो सारा बल लगा कर भी कोई भी शब्द नहीं बोल सकता। हाँ, एक अक्षर है जिसे बच्चा, बूढ़ा, जीभ कटा, तुतला, हकला और गूँगा भी बड़ी सुगमता से बोल सकता है, और वह अक्षर 'ओम्' है। दाँत मुँह में न हों, जीभ कट गई हो, तो तुतले हकले और गूँगेपन में भी परमात्मा की भक्ति से कोई वंचित नहीं किया गया। ओम् उच्चारण में तो दांत और जीभ आदि के हिलने का काम ही नहीं है, गला ठीक होना चाहिए, इस में केवल कण्ठ का काम है। कण्ठ को खोल कर लम्बे ओ की ध्वनि को गुंजाओ और अन्त में होंठ बन्द कर दो, अथवा 'ओ' ध्वनि अपने आप शांत होने दो, सांस समाप्त होने के समय 'ओ' की ध्वनि, नाक में धीमी-धीमी गूँजने लग जावेगी, उस समय 'ओम्' का उच्चारण पूर्ण हो

जावेगा। किसी मनुष्य का कण्ठ तभी बन्द होता है, जब उसके जीवन के पल समाप्त हो जाते हैं। मनुष्य के अन्त काल तक उसका गला बना रहता है, इससे मनुष्य जीवन के अन्तिम श्वास, अन्तिम पल पर्य्यन्त परमात्मदेव के पवित्र नाम की डोर पकड़ सकता है, भक्त बन सकता है और स्वर्गारोहण कर सकता है।

जातकर्म संस्कार और ओम्

आर्य्य लोग संस्कारों के महत्त्व को आदिकाल से मानते चले आये हैं, जैसे औषधियों को बारबार भावना वा पुट देने से वे प्रबल हो जाती हैं, जैसे धातुओं में शोधन आदि क्रियाओं से पुष्टि और प्रबलता आ जाती है, वैसे ही संस्कारों से मनुष्य जाति की प्रबलता हो जाती है।

संस्कार पद्धति के अनुसार जब बालक का जन्म हो तभी उसका पिता सुवर्ण शलाका को घृत और मधु लगाकर नवजात बालक की जीभ पर बड़े कोमल हाथ से 'ओम्' लिखे और उस दूज के चाँद के दर्शनों से प्राप्त हुई प्रसन्नता का प्रकाश "अङ्गा-दङ्गात्सम्भवसि" इत्यादि पाठ पढ़ कर करे। उसी समय उस के कान में "वेदोऽसि" तू वेद है, ये शब्द कहे।

जन्म से ही बालक की जीभ पर ओम् लिख कर वैदिक पिता स्वसन्तान को इस भावसे प्रभावित करता है कि मेरे चित के चाँद तेरी जीभ पर पहले पहल विराजने वाला शब्द 'ओम्' है, तेरी जीभ पर सदा रहने योग्य कोई नाम है तो यह 'ओम्' है।

घृत और मधु, यह दोनों पदार्थ रोगों को दूर करने वाले हैं, इन से परमेश्वर का नाम 'ओम्' लिखने का यह तात्पर्य्य है,

कि घृत से अधिक पुष्टि देने वाला, रोग नाशक, मधु से भी अधिक मधुर और दोष विनाशक ईश्वर का 'ओम्' नाम है। रसना को इस का रस सदा लेते रहना चाहिये।

यद्यपि हीरा मोती आदि रत्न बहुमूल्य हैं, उन का बड़ा आदर है, यह भी ठीक है कि कभी २ एक दो तोले भर के हीरे की बराबरी सेरों सोना नहीं कर सकता, पर आग में पड़ने से जहाँ सारे रत्न कोयला अथवा राख हो जाते हैं, वहाँ आग में पड़ कर सुवर्ण अधिक उज्ज्वल हो जाता है, और अतिशय चमकने लगता है। इस लिए वास्तविक धन सम्पत्ति सोना है, जिस का नाश अग्नि भी नहीं कर सकती। पुत्र की जीभ पर सोने की शलाका से 'ओम्' लिखते समय, मानों यह प्रकट किया जाता है कि हे बालक! सोने से अधिक मूल्यवान् सदा उज्ज्वल रहने वाला धन आत्मिक धन है, और वह ओम् है। वैदिक माता पिता अपने प्यारे पुत्री पुत्र को पहले पहिल कोई सम्पत्ति, कोई धन, और कोई वस्तु देते हैं, कि जो बच्चे को दूध देने से भी प्रथम देनी लिखी है, तो वह आत्मिक सम्पत्ति है। परमात्मा का 'ओम्' नाम है।

सुवर्ण का रंग सब रंगों में उत्तम रंग है, प्रभात में ऊषा में सुवर्ण रंग ही की झलक होती है, जिस से सारे संसार के कवि इस पर मोहित हैं, मन को मुग्ध बना देने वाला सन्ध्या का सौन्दर्य्य, सुवर्ण परिष्कार के कारण ही कविता में इतना ऊंचा पद पा गया है। सब ऋतुओं का राजा वसन्त समझा जाता है, उस का वेष भी सुवर्ण रंग से रंगा गया है। आर्य्यों में विवाह के समय केशरी वस्त्र धारण किये जाते हैं। अथवा उत्तम रंग जान कर केशर के छींटे दिये जाते हैं। आर्य राजपूत संग्राम जाते समय केशरिया वेष धारण किया करते थे। केशर

का रंग भी सुवर्ण रंग के समान है। इसलिए उक्त समयों के वेषों से प्रकट किया जाता है कि सर्वोत्तम प्रसन्नता के भाव सुवर्णमय हैं, कर्त्तव्यपरायण वीर क्षत्रिय के भाव सुवर्ण रंग रञ्जित हैं।

आदर्श जीवन मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और ज्ञान के सागर श्रीकृष्ण भी केशरी ही दुपट्टा पहना करते थे। इस से यह कल्पना हो सकती है, कि सर्वोत्तम कर्म योग के विचारों युक्त आत्माओं और विशुद्ध आत्म ज्ञानियों को भी सुवर्ण रंग ही प्रिय लगता है। लगना चाहिए भी, क्योंकि सुवर्णमय आचार, कर्तव्य कर्मयोग है, सुवर्णमय विचार, सङ्कल्प और भाव आत्मज्ञान के लक्षण हैं। आर्य्य देश के लोग देवताओं पर भी केशर चढ़ाते हुए मानो यह प्रदर्शित कर रहे हैं, कि किसी का पूजन, किसी की विनय करना, सुवर्ण रूप विचारवान् व्यक्ति का ही काम है।

आत्मवादियों के मत में प्रातःकाल जागते समय ही, नेत्र बन्द करके प्रभु का नाम जपते हुए सुवर्ण रंग देखने का यत्न करना चाहिये। प्रसन्नता, सफलता और नीरोगता का रंग सुवर्ण है, यदि सुवर्ण रंग स्थिरता से दीखने लग जाय, तो तन मन में प्रसन्नता की वृद्धि और स्थिति लाभ होती है। प्रभात में जागना और धर्म अर्थ आदि का चिन्तन करना मनु भगवान ने बताया है। ऐसे सुवर्ण समय में सुवर्ण विचारों का उत्पन्न होना बहुत सम्भव है।

प्रातः और सायङ्काल का सूर्य्य सुवर्ण पिण्ड के समान दीख पड़ता है, पर्वतशिखर पर अथवा सागर गत जहाज़ में से जिस किसी को कभी सूर्य्योदय अथवा सूर्य्यास्त का दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, वह मुक्त कण्ठ से कहेगा,

कि उस समय सूर्यदेव सुवर्ण स्वरूप बने हुए होते हैं, और ऐसा प्रतीत होता है, कि मानो पूर्व अथवा पश्चिम में कोई लम्बा चौड़ा सुवर्ण पर्वत पिघल गया है। आर्यों के धर्मग्रन्थों में प्रातः पूर्वाभिमुख और सायं पश्चिमाभिमुख होकर सन्ध्या जपने का विधान है। सूर्याभिमुख होकर सन्ध्या जपने पर शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक अनेक लाभ हैं। सन्ध्या रूप सुवर्ण विचार सुवर्ण आचार में जब एक भक्त निमग्न हो, उस के लिए कितने आनन्द की बात है, कि जिस समय में सन्ध्या जपता है, वह सुवर्णमय, जिस ओर उसका मुख है, वह दिशा अपने स्वामी समेत सुवर्ण रूपा हो रहा है, अन्दर बाहर सर्वत्र सुवर्ण ही सुवर्ण विराजित है।

सुवर्ण रंग का महत्त्व इस से अधिक कोई क्या कहेगा, कि जिन सर्वत्यागी, वीतराग संन्यासियों ने तामस, राजस वृत्तियों को शमन करके विशुद्ध सत्वगुण की सुवर्णमयी ज्योति को लाभ किया, वस्त्र रंगने के लिए उन्हें भी सुवर्ण सा कुसम्भिया अथवा गेरुआ रंग ही अच्छा लगा।

ऊपर कहे गुणों का केन्द्र और महत्त्व की मूर्ति और अवतार सुवर्ण है। उस सुवर्ण की लेखनी से लिखने योग्य शब्द 'ओ३म्' के बिना और कौन हो सकता है। ठीक है, महेश्वर के नाम के आगे महेश्वरी-माया ही को माथा टेकना चाहिए। मनुष्य सोने के सुन्दर स्वरूप के सामने सारे संसार के स्वामी का विस्मरण न करे न छोड़े, किन्तु शोभा के धाम सोने को उस के नाम पर वारे, सोने को उस के नाम के आगे झुकाये, और और सोना उस का नाम लिखने के लिए घिसाये।

पुत्र पुत्री की जिह्वा पर सब से प्रथम 'ओ३म्' लिखने का

यह भी तात्पर्य्य समझना चाहिए कि बच्चे को सब से पहले 'ओ३म्' शब्द ही सिखाना उचित है। ऐसा करना एक तो सन्तान पर शुभ संस्कार डालना है, दूसरे 'ओम्' अतीव कोमल होने से बच्चे को उच्चारण करना सुगम है, ओ ओ तो प्रत्येक बच्चा पुकारा करता ही है, केवल होंठ बन्द करना ही शेष रहता है, और वह भी बच्चे के लिए कोई कठिन काम नहीं। उन माता पिताओं को अपना सौभाग्य समझना चाहिए, जिन की सन्तान बाल्यकाल से आस्तिक भाव के संस्कारों से रंगी जाय, वह सन्तान भी पुण्यवान् है जिस को पैतृक सम्पत्ति की भांति ईश्वर की भक्ति ईश्वर नाम माता पिता से प्राप्त हुआ है। माता की ओर से इस से बढ़कर सन्तान को देने की कोई वस्तु नहीं और यह पितृऋण का बड़ा भाग हैं, जिसे सन्तान ने आजन्म स्मरण रखना है।

अन्तकाल में ओम् स्मरण

"ओ३म् क्रतो स्मर" वेद आज्ञा करता है, कि हे मनुष्य! तेरी आत्मा निकल जाने पर यह देह अन्त में भस्म है, अतएव 'ओम्' का स्मरण कर। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा, कि जो मनुष्य मरण समय भी 'ओम्' का स्मरण करता है, वह परम गति को लाभ कर लेता है। महाभारत में कहा है, कि जब द्रोणाचार्य पर धृष्टद्युम्न ने प्रबल प्रहार किया तो आचार्य सम्भल न सके, तन पिञ्जरे से उन के प्राण पखेरू उड़ने लगे, उसी समय समर भूमि में ज्ञानी ब्राह्मण ने ओम् में ध्यान लगाना आरम्भ किया, और अन्त में मरणधर्म देह को छोड़ कर उन का आत्मा 'ओम्' की सीढ़ी से स्वर्गारोहण कर गया।

जिस मनुष्य का अन्त सुधर गया, उस का सब कुछ सुधर गया। महात्माओं के मन में जिस की मति अन्त में भी 'ओम्' में लग जाय उसका नाश नहीं होता परन्तु मोह माया में फंसे हुए मनुष्य के लिए अन्त का समय अपने आप सुधरना कोई बात नहीं है। अन्त सुधारना सन्तान का काम है। पितरों के लिए अन्त समय सन्तान सहारा है, स्वर्ग का द्वार है। जैसे डूबते हुए मनुष्य का आप ही आप किनारे आजाना बड़ा कठिन है, ऐसे ही मरण काल में मोह माया के सागर में डूबते जन का धर्म वृत्ति पर आ लगना महा कठिन है। मृत्यु और मोह के सागर में डूबते को बचाने वाला कोई और चाहिए।

पितृ ऋण उतारना सुसन्तान का परम कर्म है। उस के उतारने के कई मार्ग हैं। सन्तान को सुयोग्य बनाना, गृह धर्म का पालन करना, कुल धर्मों को निभाना, आदि सब कार्य पितृ ऋण उतारने के छोटे २ साधन हैं, पर सब से बड़ा सब से उत्तम साधन पितरों को भगवान् का नाम स्मरण कराना है, उन्हें आत्म चिन्तन कराना है। सन्तान का जन्म होते ही पितरों ने जो 'ओम्' नाम का दान दिया था, सो उन के प्रस्थान के समय यह 'ओम्' नाम बार २ उन की जीभ पर रखना चाहिए, और उन्हें स्मरण कराना चाहिए।

संसार ओम् रूप है

अ, उ, और म् इन अक्षरों से ओम् बना है। ज्ञानियों की कल्पना में ओम् के तीन अक्षर ईश्वर, जीव और प्रकृति, इन तीन अनादि पदार्थों के प्रतिनिधि भी हैं, 'अ' से ईश्वर 'उ' से जीवात्मा और 'म्' से माया प्रकृति का ग्रहण किया जाता है। जैसे 'अ' 'उ' और 'म्' के मिलाप से ओम् बना है, ऐसे

ही ईश्वर, जीव और प्रकृति से इस अनन्त विश्व की रचना हुई है। ओम् की रचना में जिस प्रकार 'अ' और 'म्' के मध्य 'उ' की स्थिति है, इसी प्रकार ईश्वर और माया के मध्य विचरने वाला जीवात्मा है। अक्षरों में 'अ' 'उ' ये दोनों अक्षर स्वर हैं, परन्तु 'म्' व्यञ्जन है। स्वर स्वतंत्र अक्षर होते हैं, और व्यञ्जन अक्षर स्वरों के आधीन होकर बोले जाते हैं। जब तक व्यञ्जन अक्षर में कोई स्वर न हो, वह बोला नहीं जा सकता। विश्व में भी परमेश्वर और जीवात्मा ये दो स्वतंत्र पदार्थ हैं, ये अपनी सत्ता और चेतनता से स्वयं प्रकाशित होते हैं, परन्तु कारण रूप प्रकृति में यदि ईश्वरेच्छा और जीवात्मा का प्रवेश न हो, तो यह कार्य रूप में कभी भी प्रगट नहीं हो सकती।

'अ' और 'म्' इन दोनों का मध्यवर्ती 'उ' अक्षर यदि 'म्' में मिल जाय तो उस की दशा 'मुख' मुँह आदि शब्दों के 'म्' में मिले 'उ' की सी हो जाती है। 'उ' नीचे पड़ा हुआ है और व्यंजन शक्ति ही न 'म्' उस के सिर पर सवार है। विश्व रचना में भी यही समझना चाहिए कि स्वर अक्षरवत् स्वतन्त्र जीवात्मा अविद्यावश अपने आप को भूल जाता है, और परमात्मा को छोड़ कर प्रकृति, माया और इस लोक ही को सब कुछ समझने लग जाता है, तो यह माया उकार अक्षर के सिर पर 'म्' व्यजंन अक्षर की भाँति जीवात्मा के सिर पर बैठ जाती है, इस को अपना दास बना लेती है, और जन्म जन्मान्तर के ऊँच नीच नाना नाच नचाती रहती है।

और यदि आकार और 'म्' का मध्य स्थित उकार अक्षर आदि अक्षर 'अ' में जा मिले तो दोनों मिलकर 'ओ' बन जाते हैं। एक रूप औरएक स्वर हो जाते हैं। 'ओ' के पास यदि व्यंजन 'म्' आ भी जावे, तो भी 'अ' में मिले 'उ' को छू नहीं सकता, किन्तु 'ओम्'

अथवा ओ के व्यंजन 'म्' वा बिन्दु की भाँति पृथक् ही पड़ा रहेगा। ऐसे ही जीवात्मा, परमात्मदेव की उपासना करके जब परमात्मा की प्राप्ति कर लेता है, तब इस का स्वरूप परमात्मा के गुणों से पूर्ण हो जाता है। परमानन्द में निमग्न आत्मा को माया बाँध नहीं सकती, उसका स्पर्श नहीं कर सकती, किन्तु ऊपर कहे हुए 'म्' व्यंजन अनुसार की भांति शक्ति हीन माया, शून्यवत् माया अकिञ्चित् करा हो जाती है।

अकार अक्षर यदि 'म्' व्यंजन में मिल जाय तो उस का रूप 'म' इस प्रकार होता है। 'म्' में मिला हुआ उकार तो स्पष्ट दीख पड़ता है, परन्तु अकार दिखाई नहीं देता। आँखों का विषय नहीं रहता, केवल मन बुद्धि ही से जाना जाता है, कि "राम" शब्द के 'म' में अकार है, ऐसे ही समझना चाहिए, कि परमेश्वरदेव 'म' में अकार की भाँति प्रत्येक परमाणु, एक २ पत्ते और अखिल पदार्थों में रमे हुए हैं, परन्तु इन्द्रियों से ग्रहण नहीं हो सकते। भक्त लोग अपने ज्ञान श्रद्धा और विश्वास ही से ईश्वर सत्ता को सर्वत्र विद्यमान जानते और मानते हैं।

नाम नामी का सम्बन्ध

'ओ३म्' अक्षर परमात्मा का नाम है, वाचक है, और रमी हुई चेतन सत्ता, ज्ञान, आनन्द पूर्ण सत्ता इसका नामी और वाच्य है। ओम् शब्द है और सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा इस का अर्थ है। जैसे जल शब्द का अर्थ द्रवीभूत, पतला, शीत, स्पर्शवान् पदार्थ, अग्नि शब्द का अर्थ उष्ण स्पर्शयुक्त, तेजोमय पदार्थ है; ऐसे ब्रह्मवस्तु ही 'ओम्' का अर्थ

है। वाच्य वाचक का शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है। जैसे गुण गुणी में रहता है, ऐसे वाक्य—वाचक में, अर्थ शब्द में रहता है। भक्ति भाव से भरपूर हृदय युक्त भक्तों को यह निश्चय होना चाहिए, कि जिस प्रकार अग्नि में रूप और उष्ण स्पर्श, जल में रस और शीत स्पर्श नित्य रहता है, इसी प्रकार ओम् वाचक में इस का वाच्य, ओम् शब्द ही में इसका अर्थ नित्यता से रहता है, कभी भी पृथक् नहीं होता।

कल्पना करो कि एक मन्दिर में प्रज्ञा चक्षुओं की एक मण्डली विराजमान है, एक देव नाम पुरुष को कार्य्यवश वहाँ जाना पड़ा है, किसी व्यक्ति के आने की आहट सुन कर वे सारे सूरदास उस के आस पास चारों ओर बैठ जाते हैं। एक सूरदास आगे हाथ फैला कर देव को अंगुली से पकड़ कर पूछता है, कि आप कौन हैं ? उत्तर मिलता है 'मैं हूँ देव'। ऐसे ही कोई हाथ, कोई भुजा, कोई पाँव और कोई शिर आदि छू कर नाम पूछ रहा है, और वह आगन्तुक सब को 'मैं देव हूँ' यही उत्तर देता चला जाता है। तात्पर्य्य यह है कि देव नाम एक व्यक्ति का है। हाथ, भुजा और शिर से पांव तक सारे अंग उस व्यक्ति के अंग हैं। सारे अंगों का समुच्चय वह व्यक्ति है, इस लिए जिस भी अंग को, उस व्यक्ति के जिस भी देश को स्पर्श करोगे उसी अंग और देश में 'देव' इस संज्ञा की व्याप्ति है। जितने देश में नामी होगा उतने ही देश में उस का नाम भी होगा।

परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है, हमारे मन और अन्तःकरण में विद्यमान है, हमारी बुद्धि में भी उस का प्रकाश है। जिस मनो मन्दिर में हम 'ओम्' जपते हैं, जिस कण्ठ से 'ओम्' की ध्वनि गूंजती है, जिस जीभ पर 'ओम्' नाम विलास करता है, और जिन कानों में 'ओम्' की

पवित्र ध्वनि पड़ती है, उन सब अंगों में परमात्मदेव परिपूर्ण रूप से विराजमान है। हमारी अस्थि, मज्जा और रोम २ में रमा हुआ है, और तो क्या कहें, ओम् शब्द में ओम् ध्वनि में भी परमात्मा परिपूर्ण है।

जप काल में भक्त को यह दृढ़ विश्वास होना आवश्यक है, कि ईश्वर मेरे समीपतम है, वह मेरी प्रत्येक स्फुरणा को देख रहा है। जब मैं 'ओम्' शब्द का उच्चारण करता हूँ तभी वह परम प्रेममय गुरु मुझे आशीर्वाद देता है, और मुझ पर परम प्रसन्न होता है।

"तज्जपस्तदर्थभावनम्"

उस 'ओम्' अक्षर का जप और उस 'ओम्' अक्षर का अर्थ चिन्तन करने से चित्त एकाग्र हो जाता है। प्रणव का जप और प्रणव के अर्थों का चिन्तन भक्ति धर्म है। जप से ईश्वर में प्रेम उत्पन्न हो जाता है, विश्वास की मात्रा बढ़ जाने से भक्त भगवान् की कृपा का भागी बन जाता है। 'प्रणिधानाद्भक्ति-विशेषादावर्तित ईश्वरस्तमनुगृह्णाति' व्यासदेव ने कहा है, कि 'भक्ति से आराधन किया हुआ ईश्वर भक्त पर अनुग्रह करता है'। इस लिए 'ओम्' के जप में मन को लगाना उस से भक्ति भाव को बढ़ाना और अन्त में ईश्वर अनुग्रह का पात्र बनना योग के जिज्ञासु मुमुक्षुओं का परम कर्त्तव्य है। यह निश्चित समझना चाहिए कि यह मार्ग योग का सर्वोत्तम साधक है, और परम योगी व्यासदेव के कथनानुसार 'अभिध्यानमात्रेण' ओम् का ध्यान करने ही से 'योगिन आसन्नतमः समाधिलाभः

फलञ्च भवति' योगी को बहुत ही समीप (शीघ्र) समाधि का लाभ और फल मिल जाता है।

पर इस भक्ति में परम प्रेम, अचल विश्वास, दृढ़ धारणा और निर्दोष श्रद्धा चाहिए।

ओम् स्मर

जिस नाम का कोई जप करता है, उस में उस का प्रेम अवश्य होता है, और जिस का उत्कट प्रेम किसी के हृदय में होता है उस के चित्त में प्रमी की चितवन सदा बनी रहती है। चिन्तन शब्द का होता है और शब्द नाम है, इस लिए चिन्तन करने का अर्थ मानस जप है। यदि वाणी के साथ मन भी है, तो वाणी का जप बुरा नहीं है, अच्छा है, परन्तु फिर भी वाचिक जप की अपेक्षा भगवान् मनु की आज्ञानुसार बिना होंठ आदि हिलाये जो जप किया जाता है, वह 'उपांशु' जप है, और सौ गुणा अधिक फलदाता है। मानस जप का महत्त्व सहस्र गुणा अधिक है। मानस जप में जितना शीघ्र मन रुकता है, उतना वाचिक और उपांशु में नहीं, व्यासदेव कहते हैं, कि 'तदस्य योगिनः प्रणवं जपतः प्रणवार्थं च प्रभावतश्चित्तमेकाग्रं सम्पद्यते' प्रणव को जपते हुए और प्रणव का अर्थ चिन्तन करते हुए, इस योगी का चित्त एकाग्र हो जाता है। इस पर व्यासदेव ग्रन्थान्तर का प्रमाण देते हैं 'जप से चिन्तन करें, और चिन्तन (ध्यान) के पश्चात् फिर जप करें, जप और ध्यान की सिद्धि से परमात्मा का प्रकाश होता है'।

सहजाभ्यास

श्वास प्रश्वास के साथ अथवा बिना सांस में वृत्ति लगाए 'ओम्' का जाप, चिन्तन और ध्यान सहजाभ्यास है। इस अभ्यास का करना, आबालवृद्ध, सबल निर्बल, सब नर नारियों के लिए सहज है, सुगम है, अन्य अभ्यास के मार्गों में बहुत कठिनाइयाँ हैं। आठ पहर चौबीस घण्टे संसार के काम धन्धों में फंसे हुए स्त्री पुरुषों, बुढ़ापे के बोझ से जर्जरीभूत जनों, दुर्बल, क्षीण दीन हीन देह युक्त मनुष्यों, रोग के दारुण दुःख से पीड़ित प्राणियों और कुसंगत कुसंस्कार तथा विषय वासना से सदा चलायमान चित्त वाले गृहस्थियों से कठिनतायुक्त योग-साधन सिद्ध होने कितने दुष्कर हैं, इस का समझना सब के लिए सुगम है। अतएव संसार समुद्र में जप योग का जहाज है, कि जिस में बैठ कर राजा, रंक, मूर्ख, पण्डित, लूला, लंगड़ा, गूंगा, बहरा, दुर्बल, दुःखिया और बूढ़ा बच्चा सभी पार जा सकते हैं। इस साधन के सभी अधिकारी हैं। इस साधन के साधने से अन्य सारे साधन आप से आप सिद्ध होने लग जाते हैं। सारे गुण, सम्पूर्ण कल्याण और सर्व सफलताएं इस के अभ्यासी में ऐसे प्रवेश करने लग जाती हैं जैसे महासागर में नदियां।

प्रणव के उपासक को चाहिए कि प्रातःकाल नींद से जागते ही हृदय क्षेत्र में विचार मात्र उत्पन्न होने से पहिले ओम का जप करने लग जाय, तत्पश्चात् आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर सन्ध्या समय भी प्रणव का पाठ करे। प्रतिदिन नियम पूर्वक दो घड़ी पर्यन्त प्रणव पवित्र का पाठ करने वाले अभ्यासी को प्रभु प्रेम का परिणाम स्वयं प्रतीत होने लगेगा। प्रणव पाठ

का सर्वोत्तम समय आधी रात और प्रातःकाल है। पर परम प्रेम में समय की मर्य्यादा और नियम नहीं रहता, इस लिए चलते, फिरते, उठते, बैठते जब अवसर हाथ आवे, अपने मन के तीर को प्रणव के लक्ष्य में खैंच २ कर लगाते रहना चाहिए। चारपाई पर पड़े २ जब तक नींद न आवे, ओम् का ध्यान करते रहना बड़ा उपयोगी है। एक तो इस से शीघ्र नींद आ जाती है, दूसरे स्वप्न अथवा कुस्वप्न कम आते हैं, और तीसरे सर्वो-त्कृष्ट लाभ यह है, कि अभ्यासी जब तक सोता रहेगा तब तक प्रणव पवित्र का संस्कार उसके मस्तिष्क में उसके अन्तःकरण में उसके अन्तरात्मा (सब्जेक्टिव माइण्ड) में स्फुरित रहेगा जिस से सारी काया ही भक्तिमयी हो जाती है। सम्पूर्ण खोटे संस्कार मिट जाते हैं। यहां तक कि इस साधन के सिद्ध होने पर बिना प्रयत्न किए प्रणव पाठ निरन्तर होता है, और शरीर योगमय बन जाता है।

परमात्मा के प्रेमी जन जब किसी अद्भुत दृश्य को देखते में, जब कभी किसी घटना का अवलोकन करते हैं तब वे उसी समय ओम् का लम्बायमान उच्चारण करते हैं, इस से मन को एक ऐसा प्रमोद प्राप्त होता है, जो केवल अभ्यास गम्य है। जिस समय चित्तचञ्चल हो अशान्त हो, प्रमोद से पूर्ण हो और प्रणव पाठ से पराङ्मुख होता जाता हो, तो उस समय भी 'ओम्' का दीर्घ उच्चारण इसे शान्त और स्थिर बना देता है, किसी एका-न्त स्थान, नदी के किनारे, शून्य जंगल अथवा वन में और जहाँ

भी मन में सङ्कोच उत्पन्न न हो, वहाँ प्रणव पवित्र का लम्बे स्वर से गायन और बार २ गायन मन की सारी मलिनता को मिटा कर उसे शुद्ध स्थिर, प्रशान्त भाव प्रदान करता है। ऊपर कहे प्रणव गायन से भक्त के देह में आनन्द की एक विचित्र लहर उठती और सुख की एक अद्भुत धारा सी बह जाती है, जिसका वर्णन वर्णनातीत है।

प्रणव का बार २ पाठ

जो शब्द बार २ कहे जाते हैं, वह स्मरण-शक्ति का अंग बन जाते हैं। जितनी प्रबल लगन से कोई शब्द बार २ स्मरण किया जाय, उसका उतना ही प्रबल प्रभाव स्मृति पर पड़ेगा। रागविद्या सीखने वाले लोग चलते, फिरते कार्य करते, संगीत के सुरों को ही अलापते रहते हैं, लगन वाले विद्यार्थी अपने पाठ को स्वप्न में भी दोहराते रहते हैं, मनुष्य की चित्त वृत्तियाँ कुएँ के जल की भाँति हैं, कुएँ में रहते पानी का कोई आकार नहीं, बस सम है और एक ही स्वाद वाला है पर ज्यों ही अरहट की घंटियों द्वारा खेतों की त्रिकोण, चतुष्कोण आदि क्यारियों में पड़ता है तो तुरन्त तदाकार हो जाता है। मिर्च, निम्ब, नींबू, जामुन, आम, नारंगी और संतरा आदि पेड़ों की जड़ों में जा कर अपना स्वाद भी बदल डालता है, चित वृत्तियां भी जैसे अर्थों वाले शब्दों में डोलती हैं, वैसे उनके आकार बन जाते हैं, और उन शब्दों के अर्थों के भावों और प्रभावों से सर्वथा प्रभावित हो जाती हैं। जिस रस रंग के शब्द कोई गायेगा, वही रस रंग उस की चित चादर पर अवश्यमेव चढ़ जायगा, इस लिए समझना चाहिए कि जो भक्त जन पूर्ण प्रेम और प्रबल भावना से भगवान् के नाम प्रणव का स्मरण करते रहते

हैं, कालान्तर में उन की वृत्तियाँ प्रणवाकार हो जाती हैं, उन की स्मृति में न उतरने वाला प्रणव का रंग और उनके मन में न फीका होने वाला प्रणव का रस बस जाता है।

नव सुत सिमरै सुरभि ज्यों, त्यों सुमिरो भगवान् ।
पनहारी ज्यों कलश का, करो ओम् का ध्यान ॥
सती बिरह सन्तापिता, सुमिरै पति मन लाय ।
ओम् नाम सिमरो सदा, संशय सकल मिटाय ॥
भूखा भोजन को भजे, रंक भजे ज्यों दाम ।
सदा प्रेम से सुमरिए, ओम् ईश का नाम ॥
मीन हीन जल से यथा, जल ही में मन दे ।
एक भावना से तथा, ओम् नाम भज ले ।
आतुर सिमरे ओषधी, ज्यों बँधुआ निस्तार ।
ओम् नाम त्यों सुमरिये, तीन लोक का सार ॥
मन मन्दिर में जगमगे, ओम् नाम जब जोत ।
अघ तम का तब नाश हो, बहे सुखों का स्रोत ॥
रस है तीनों वेद का, ओम् नाम अभिराम ।
भाव भक्ति से जो भजे, होवे पूरण काम ॥

परमात्मा भीतर से प्रकाशित होता है

माना कि पानी २ कहने से प्यास नहीं बुझती, केवल रोटी पाठ से भूख नहीं मिटती, और अग्नि शब्द के उच्चारण से मुख नहीं जलने लगता; परन्तु इस वार्त्ता से किस बुद्धिमान् को नकार है कि पानी २ आदि शब्दों की कोई तभी पुकार करता

है जब कि इन वस्तुओं के लिए उस के मन में महा माँग होती है। कोई भी विचार से देखे तो उसे प्रतीत होगा, कि जगत् में जातियों को भौतिक प्रभुता के मधुर फल इस महा माँग ही के बल से मिले हैं। इसी मानस माँग में सारी उन्नति निवास करती है और इसी मनोरथ रूपी माँग से प्रेरित होकर मनुष्य उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है।

जो भक्त परमात्मदेव के परम पवित्र ओम् नाम में बार २ अपने मन को लगाते हैं, वे परमात्मदेव की प्राप्ति की अपनी लगन प्रकाशित करते हैं, बार २ नाम पाठ से भक्त के चित्त में समाई हुई अनन्त चेतना की चाह प्रगट होती है। बहुत से दूर स्थित प्राकृत पदार्थों के नाम का पाठ फल सिद्ध रूप न हो परन्तु फल सिद्धि का प्रबल निमित्त कारण और सिद्धि प्राप्तकर्त्ता की क्रिया का उपादान कारण अवश्यमेव है।

परमात्मा प्राप्ति की कथा भौतिक पदार्थों की प्राप्ति से सर्वथा भिन्न है। प्रकृति के स्थूल पदार्थ, कर्त्ता के मन से प्रेरित उसकी स्थूलइन्द्रियों की स्थूल क्रिया से प्राप्त होते हैं, क्योंकि प्राप्त कर्त्ता व्यक्ति से बाहर के पदार्थ उसकी बाहर की क्रिया की अपेक्षा करते हैं, परन्तु परमात्मा सूक्ष्मतम है सब के भीतर परिपूर्ण है, इस लिए विवेक, विचार, ज्ञान और भक्ति आदि साधनों ही से उसकी प्राप्ति होती है, यह सब शास्त्र सम्मत सिद्धान्त है।

उक्त विवेकादि साधन अन्तरंग साधन हैं। ये साधन भक्त के अपने आत्मा का प्रकाश हैं। सच तो यह है कि सब का अन्तरात्मा परमात्मा भक्त के आत्ममन्दिर में विराजमान है उसकी प्राप्ति के लिए केवल प्रेम तैल से भरा हुआ ज्ञान का प्रदीप्त दीपक चाहिये, रोटी २ पुकारता हुआ भूखा भले ही भूखा रह जाय, क्योंकि उसका भोजन उस से दूर है पर भक्त लोग

तो जिस चित्त में ईश्वरका चिन्तन करते हैं, वही उन का आत्मिक भोजन है, और जिस रसना से सारे रसों के सार ओम् नाम को जपते हैं, उसी रसना में, उसी नाम में परम तृप्तिकारक अमृत रस विद्यमान है। उस अमृतरस को अनुभव करने के लिए केवल अभ्यास की आवश्यकता है, और मानस तथा वाचिक जप ही का नाम यहाँ अभ्यास है।

"आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पुरुषः" भूल से भेड़ों के गल्ले में विचरने वाले सिंह पुत्र को अपने भीतर ही भूला हुआ सिंहपन प्राप्त करने के लिए 'मैं सिंह हूँ" इस पाठ को बार २ जपने की बड़ी आवश्यकता है। इसी पाठ स्मरण से उसे स्मृत सिंहसत्ता का बोध होगा। अपने आप को विनाश और मरणधर्म्मा मानने वाले मनुष्य को उसे अमर अविनाशी स्वरूप का बोध केवल ज्ञान से सम्भव है। आत्मज्ञान आत्मगुणों के बार २ चिन्तन से होता है। "मैं अमर, अविनाशी, अछेद्य, अभेद्य और चेतन हूँ" इत्यादि आत्मस्वरूप बोधक शब्दों के बार २ जाप से अपने भीतर भूला हुआ अपना स्वरूप अपने भीतर ही उपलब्ध होता है। सारांश यह कि जैसे अपने आप को विस्मृत सिंह को अपनी सत्ता का ज्ञान, आत्मस्मरण से सम्भव है, और आत्मा का आत्मबोध आत्मचिन्तन से अपने भीतर होता है, ऐसे ही अन्तरात्मा में व्यापक परमेश्वरदेव का ज्ञान उसके सच्चिदानन्द आदि गुण युक्त ओम् नाम के बार २ स्मरणाभ्यास से स्वात्मा ही में सम्भावित है। किसी शब्द का बार २ चिन्तन मानस जाप के लिए पर्य्यायवाची शब्द मात्र ही समझना चाहिए।

चिन्तन कर मम मना ओम् नाम अनमोल।
ज्योति जागती देख ले चित्त किवाड़ें खोल॥
चिन्तन के प्रभाव से कायर वीर हो जाय।

स्यार सिंह समता गहे भय मारु में न आय ॥
ऊँच नीच अच्छा बुरा सज्जन दुर्जन पाप।
जैसी जिस को भावना वैसा हो वह आप ॥
चित्त में चिन्तन लग्न से जिस में जिस का हो।
कोटि विघ्न को बाध के निश्चय पहुँचे सो ॥

"तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"

नाम प्रभाव

इस बात को सभी मनुष्य मानते हैं, कि अशुभ संकल्पों अधम विचारों, नीच भावों और अपवित्र चिन्तनों के उत्पन्न होने पर मनुष्य का मन मैला हो जाता है। शुभ संकल्पों और शुद्ध भाव आदिकों के उत्पन्न होने से मनुष्य का मन निर्मलता और पवित्रता प्राप्त कर लेता है। किसी दुष्ट नर नारी के स्मरण से चित्त सागर में पाप के तरंग का उत्पन्न होना बहुत ही सम्भावित है, ऐसे ही किसी सन्त, सज्जन भगवद्भक्त व्यक्ति के ध्यान से अपने भीतर शुभ भाव, शुभ संकल्प और सज्जनता की लहरों का उठना स्वाभाविक है। सभी गुणों के समूह पवित्र ओम् नाम के समान शुद्ध पवित्र और निर्मल दूसरा कोई संकल्प, कोई भाव, कोई चिन्तन और विचार नहीं है। अन्तः-करण की सम्पूर्ण वृत्तियों में सर्वोत्तम वृत्ति परम पवित्र वृत्ति भक्ति वृत्ति है। परम पवित्र परमात्मदेव है, अतएव ओम् पवित्र के चिन्तन मात्र से मनुष्य के मन में पवित्रता की धारा बहने लगती है। मन की मलीनता धुल २ कर दूर होने लग जाती है। ओम् नाम का प्रभाव अन्य सम्पूर्ण प्रभावों से प्रबल है।

विशूचिकादि महा रोगों के दिनों में सर्व साधारण को वैद्य लोग शिक्षा दिया करते हैं, कि महारोग का ध्यान व चिन्तन

नहीं करना चाहिए। इसके ध्यान से हृदय दुर्बल होने लगता है। इस की रुचि रोग की ओर झुक पड़ती है, और अन्त में मनुष्य रोग के पञ्जे में पड़ जाता है। प्रसिद्ध वैद्य मण्डल में यह बात मानी गई है, कि रोगों का बीज रोगों का ध्यान है। जो प्रत्येक पदार्थ के उपयोग में वात, पित्त, कफ की प्रतिमा देखते रहते हैं, जो पाँव २ पर शकुन सोचते रहते हैं, जो बात बात में शीत उष्ण का विचार रखते हैं, मित्र मण्डल में बैठ कर जो अपने रोगों की कथाएं किया करते हैं, और जिनकी काया में रोग के नाम मात्र से कपकपी तथा फुरफुरी उठती रहती है वह अपने ऊँचे स्वर से रोगों को निमन्त्रण देते हैं। नाना रोग उनकी देह में बने ही रहते हैं। देशी विदेशी सब चिकित्सा कर लेने पर भी उन का पिण्ड छूटने नहीं पाता।

जब रोग के ध्यान का इतना प्रभाव है, कि उसका चिर तक ध्यान रहने से हमारी देह का सर्व नाश तक सम्भव हो, तो क्या कोई भी ऐसा विश्वासी होगा जो यह मानता हो कि ओम् के चिन्तन और ओम नाम के ध्यान का प्रभाव हमारी काया, हमारे अन्तःकरण और आत्मा पर कुछ भी नहीं पड़ता? और यह ध्यान रोग के ध्यान से गया बीता है? अहो! जिस ओम् अक्षर में ब्रह्माण्ड के सारे पदार्थ ओत प्रोत हैं, जिस ओम् के ईक्षण (इच्छा) से परमाणु २ तक प्रभावित हैं, और जो सब का अन्तरात्मा है, उस के चिन्तन और ध्यान के प्रभाव सदृश अन्य किस वस्तु का प्रभाव हो सकता है।

सर्व साधारण की यह मानी हुई बात है, कि खोटे संस्कारों से मनुष्य का मन मलीन हो जाता है। किसी को कुवचन कहने से और गाली देने से मनुष्य का हृदय दूषित और अन्तःकरण कलुषित हो जाता है। इसी प्रकार जब किसी जन पर शुभ संस्कार डाले जायेंगे, तो वह शुद्ध हो जायगा, उसके मन से कुसंस्कारों की धूल धुल जायगी। शुभ शब्द उच्चारण करने से पवित्र पदों के पाठ से सत्य, हित और मधुर वचन बोलने से मनुष्य के अन्तःकरण की कालिख और हृदय की अपवित्रता अवश्यमेव दूर होवेगी।

'ओम्' सब सच्चाइयों का केन्द्र, परम पवित्रताओं का प्रभाव और सकल शुभ संस्कारों का मूल कारण है, इस लिए जो पवित्रता, जो विमलता, जो शुभ ओम् गान, ओम् जप, ओम् चिन्तन, ओम् आराधन और ओम् ध्यान से प्रभु प्रेमी को प्राप्त होता है, वह अतुल है, वर्णन से बाहर है, केवल अभ्यासी जन उसे जान सकते हैं।

महा मिथ्यावादी के साथ यदि असत्य वचन से व्यवहार किया जाय, तो वह खिजने लगता है। छली, कपटी, दम्भी, कुसंस्कारी से भी यदि छलादि से कोई वर्त्ते तो उसके क्रोध की कोई सीमा नहीं रहती। कितना ही कोई गन्दी गाली बकने वाला क्यों न हो, पर अपने लिये गाली सुनना पसन्द नहीं करता। रात दिन दूसरों की मार धाड़ लूट खसोट में सुख मनाने वाले तस्करादि अत्याचारी जन, जब उन के संग

ऐसा वर्त्ताव होने लगे, तब मरने मारने पर उतर आते हैं, और अपवित्र से अपवित्र मनुष्य भी अपने लिए अपवित्रता स्वीकार नहीं करता, इस से पण्डित लोग इस परिणाम पर पहुँचते हैं, कि सारे संसार में किसी भी मनुष्य की सहानुभूति पाप, अपवित्रता, और अशुभ के साथ नहीं है, क्योंकि प्रत्येक स्त्री पुरुष अपने लिए दूसरों से शुभ चाहते हैं, पुण्य कर्म मांगते और पवित्र व्यवहार की प्रतीक्षा करते हैं, और यह भी सभी जानते हैं; कि रोग मात्र को कोई नहीं चाहता। किसी रोग से कोई भी जन सहानुभूति नहीं करता।

जब मरुस्थल में खड़े एक क्षुद्र पेड़ के पत्ते पर पड़े हुए जल बिन्दु की भांति, पापमय संकल्प, अशुभ वचन मलीन विचार, दुष्ट संस्कार और सम्पूर्ण रोग निःसहाय हैं, सहानुभूति रहित हैं, परन्तु तब भी इन का प्रभाव इतना प्रबल माना जाता है, कि इन के चिन्तन और ध्यानादि ही से मनुष्य अपवित्र मलीन तथा रोगी हो जाता है, तब सोचना चाहिये कि उस 'ओम्' के चिन्तन, जप और ध्यान का कितना प्रबल प्रभाव होगा जिस के साथ सारे संसार की सहानुभूति है, सब सन्तों के शुभ संकल्प, सकल महात्माओं की मंगल कामनाएं, अखिल भक्तों की शुभ भावनाएं हैं और जिन के सर्वोपरि सहायक परमात्मदेव स्वयं हैं।

ओम् उपासना का फल

सकल अदृश्य अमूर्त्त पदार्थों का ज्ञान शब्द द्वारा होता है, इसलिए ओम् नाम का स्मरण ईश्वर के ज्ञान की प्राप्ति का एक मात्र कारण है। यह स्मरण शुभ और पवित्रता प्रदान करता है। इस ओम् जप गंगा में स्नान करने से मन के सारे मल उतर जाते हैं। पूर्व जीवन में कितना ही कोई पापी क्यों न रहा हो, पर ओम् के निरन्तर पाठ से पवित्र हो जायगा। ओम् ध्यान से "प्रत्येक चेतानाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च" अन्तरात्मा का ज्ञान, प्राप्ति और रोगादि विघ्नों का विनाश होगा। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है "अपनी देह (हृदय) को अरणी लड़की बना कर ओम् नाम को दूसरी (अरणी) बनावे। इन दोनों के बार २ रगड़ने (हृदय से ओम् जपने) से परमात्मदेव के दर्शन करे"। इस नाम के अभ्यासी के नेत्र पलाश के पत्ते की भाँति विस्तृत और लिखे हुए दिखाई देंगे। उन में प्रेम परिपूर्ण होगा, ओम् भक्त का मुख पद्म, प्रफुल्लित सौम्य और तेजोमय रहेगा। ओम उपासक की वाणी मधुवर्षिणी और आकर्षिणी होगी। और ओम् आश्रित का हृदय प्रसन्नता से भरपूर हो जायगा।

जैसे चुम्बक से मिलकर लोहा भी चुम्बक हो जाता है, ऐसे ही ओम् की उपासना से उपासक परमात्मदेव के दिव्य गुणों को धारण करके परमानन्द को उपलब्ध कर लेता है।

ओम्! ओम्!! ओम्!!!

ओम् प्रेम हो भक्त में, जैसे चांद चकोर।
एक तार देखे उसे, करे सायं से भोर ॥
नाचे सुन के मेघ को, जैसे नाद मयूर।
सारे तन में ओम् से, बढ़े प्रेम का पूर ॥
आकर्षित होवे यथा, लोह चुम्बक को पा।
तथा ओम् के ध्यान में, खिंच जाइए मन ला ॥
तुला ध्यान की धारिये, पलड़े प्राणापान।
शब्द रत्न तोलो तहां, चित्त वृत्ति को तान ॥
बहती धारा चित्त की, उलटा यह प्रपात।
प्रकटे त्रिकुटी कुण्ड में, सौदामिन संघात ॥
पुतली धनु को तान कर, मारिए नाम का तीर।
दर्शन सुन्दर ज्योति का, हरे पाप की पीर ॥

॥ इति ॥

सम्पर्क -
9029421716

॥ ओ३म् ॥

आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

मुद्रक— प्रताप प्रिंटिंग प्रेस, लाहौरी गेट, दिल्ली-६